

पंच महायज्ञ और वर्तमान समय में उनका महत्त्व

अरुण कान्त सिंह*

प्राचीन भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों में यज्ञ प्रधान है। वैदिक कालीन भारतवर्ष में यज्ञों का अत्यधिक महत्त्व था। भारतीय संस्कृति में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि संस्कार तक के समस्त कार्यों में वेदों की ऋचाओं के माध्यम से यज्ञों का आवश्यक विधान था। किसी भी प्रसन्नतादायक समारोह या उत्सव में यज्ञ का होना परमावश्यक था। इसलिए यहां के जीवन में कर्मकाण्ड एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता था। यज्ञों के महत्त्व की स्वीकृति वेदों में अवघोषित है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वर्णित है कि संसार की उत्पत्ति ही यज्ञ से हुई है, वही संसार का प्रथम धर्म भी था – “यज्ञेनयज्ञमयजन्त देवातानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।”¹

अथर्ववेद में बहुत स्पष्ट शब्दों में यज्ञ को विश्व की नाभि कहा गया है— “अयं यज्ञो भुवनस्यनाभिः।”² यजुर्वेद में भी सर्वश्रेष्ठ कर्मयज्ञ को माना गया है। यज्ञ को ही प्रजापति व विष्णु कहा गया है – “यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म, प्रजापतिर्वैयज्ञः।” आशय यह है कि वैदिक धर्म एवं वैदिक संस्कृति में यज्ञ का प्रमुख स्थान था। वस्तुतः वह यज्ञप्रधान संस्कृति थी।

प्राचीन भारतीय हिन्दू जाति ने नित्य के धार्मिक कृत्यों में पाँच महायज्ञों का अनिवार्य विधान किया है। मनुस्मृतिकार मनु ने अपनी रचना के तृतीय अध्याय में लिखा है कि, प्रत्येक गृहस्थ से पाँच प्रकार की हिंसाएँ प्रतिदिन होती हैं (चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली-मूसल और घटादि से) इन हिंसाओं के प्रायश्चित् स्वरूप मनु ने पाँच महायज्ञ का विधान की है। मनु के अनुसार पंच महायज्ञ इस प्रकार हैं – (1) ऋषि यज्ञ (ब्रह्मयज्ञ), (2) देव यज्ञ, (3) भूत यज्ञ, (4) नृत्ययज्ञ, (5) पितृ यज्ञ।

“ऋषियज्ञं, देवयज्ञं, भूतयज्ञं च सर्वदा।

नृत्यज्ञं, पितृयज्ञं च यथाशक्तिन हापयेत्।।”³

अर्थात् पंचयज्ञों को यथाशक्ति छोड़ना नहीं चाहिए, अपितु इनका अनुष्ठान करते रहना चाहिए। इन पंचयज्ञों को महायज्ञ कहा गया है, क्योंकि अन्य यज्ञ नैमित्तिक होते हैं, परन्तु ये नित्य के कर्तव्य हैं और मनुष्य के दैनिक जीवन से इनका गहरा सम्बन्ध है। ये महायज्ञ यदि नित्य विधिपूर्वक श्रद्धा के साथ किये जाते हैं, तो मनुष्य का जीवन निरन्तर उन्नत, पवित्र और महान हो जाता है और अन्ततः वह मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है। जहाँ तक इनकी उपयोगिता का प्रश्न है, कर्मकाण्ड की दृष्टि को छोड़कर, इनका मौलिक अभिप्राय यही है कि प्रत्येक शिक्षित और प्रबुद्ध मनुष्य का कर्तव्य है कि वह समष्टि, व्यष्टि और सब भूत-हित के आदर्शों के प्रकाश में ही अपने वैयक्तिक जीवन का निर्वाह करे। उसको ज्ञान और विद्या की उन्नति में ‘ब्रह्मज्ञान’ विश्व को नियन्त्रण में रखने वाली देवी शक्तियों में ‘देवयज्ञ’ अपने पितृ-पितामह आदि की परम्परा में ‘पितृ-यज्ञ’, प्राणियों के हित में ‘भूत-यज्ञ’ और महत्त्व तथा मानव-कल्याण में ‘नृत्ययज्ञ’ में बराबर आस्था रखनी चाहिए।

ब्रह्मयज्ञ –

वेदों के पठन-पाठन को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। इसे ऋषि यज्ञ भी कहा जाता है। वेद में कर्मकाण्ड, उपासना काण्ड और ज्ञानकाण्ड तीनों में ‘ज्ञान’ की ही प्रधानता और आवश्यकता बतलायी गयी है। ज्ञान के कारण ही जीवान्तर की अपेक्षा मनुष्य शरीर उत्तम माना गया है। ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य दुराचार का परित्याग कर धर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होता है।⁴

ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत स्वाध्याय और सन्ध्योपासना दो कर्म आते हैं। स्वाध्याय में मनुष्य प्रतिदिन प्रातः और सन्ध्या सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन और चिन्तन करे और आत्मनिरीक्षण करे, आत्मनिरीक्षण करते हुए अपने दुर्गुणों का परित्याग और सद्गुणों की अभिवृद्धि के लिए प्रयत्न करे। परिणामस्वरूप दुर्गुणों का क्षय होगा और सद्गुणों में वृद्धि होगी। ब्रह्मयज्ञ के द्वितीय अंग सन्ध्योपासना में ईश्वर की उपासना प्रमुख

* शोध-छात्र, प्राचीन इतिहास, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला (उ०प्र०)

है। प्रातःकाल आकाश में जब नक्षत्र शेष रह जायें, तब से लेकर सूर्यदर्शन तक गायत्री का जप करते हुए आसन लगाये रहें और इसी भाँति सायंकाल सूर्यास्त के समय से लेकर जब तक प्रचुर नक्षत्र आकाश में आविर्भूत न हो जायें, तब तक निरन्तर सन्ध्योपासना करते रहें। मनु के अनुसार, "संध्या करने का स्थान सुन्दर, खुली हवा वाला, जलाशय का तट अथवा उद्यान में होना चाहिए।"⁵

मनु ने सन्ध्या विधि का निर्देश करते हुए लिखा है कि सन्ध्या में पहले आचमन, अंगस्पर्श और मार्जन की क्रिया के बाद प्राणायाम किया जाता है। प्राणायाम की रीति यह है कि, "नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय का ऊपर की ओर संकोचन करते हुए भीतर की वायु को बलपूर्वक निकाल दें और फिर उसे यथाशक्ति रोके रहें। बाहर और भीतर वायु को रोकने का कम से कम इतना अभ्यास करना चाहिए कि सन्ध्या का प्राणायाम मन्त्र अन्दर ही अन्दर स्थिरता के साथ तीन-तीन बार जपा जा सके। इसी प्रकार के कम से कम तीन प्राणायाम सन्ध्या में अवश्य करने चाहिए।"

इस प्रकार प्राणायाम करने से मनुष्य की इन्द्रियों के समस्त दोष दूर हो जाते हैं। इससे आरोग्य और आयु का विकास होता है। सन्ध्या में प्राणायाम, प्राणायाम के बाद अधमर्षण मन्त्र, जिनमें परमात्मा की सृष्टि का महत्त्व तथा पाप से निवृत्ति का विधान है। तदन्तर मनसा परिक्रमा और उपस्थान के मन्त्रों में परमात्मा के नैकट्य का अनुभव, गायत्री मन्त्र से परमात्मा के सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान और तेजस्वी रूप की अनुभूति और अपनी बुद्धि को सद्मार्ग में लाने की प्रेरणा की प्रार्थना और अन्त में ईश्वर को समर्पण एवं नमस्कार करते हुए सन्ध्योपासना को समाप्त करते हैं।

इस सन्ध्योपासना में मानव के निर्माण का प्रयत्न स्पष्ट परिलक्षित होता है, व्यक्ति-व्यक्ति के निर्माण से समाज और राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न स्पष्ट है। मानव मात्र जब आत्म-निरीक्षण करता हुआ परमात्मा में निमग्न होता है, तभी विश्व का कल्याण सम्भव है। यही इस ब्रह्मयज्ञ का मूलतत्त्व है।

देव-यज्ञ -

अपने इष्टदेव की उपासना के लिए परब्रह्म परमात्मा के निमित्त अग्नि में किये हुए हवन को देवयज्ञ कहते हैं। मनुस्मृति के अनुसार -

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिवृष्टेरन्नं ततः प्रजाः।।⁶

अर्थात् देवयज्ञ में अग्नि में जो आहुति दी जाती है, वह सूर्य को प्राप्त होती है, सूर्य से वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा की उत्पत्ति होती है।

देवयज्ञ का दूसरा नाम अग्निहोत्र भी है। अग्निहोत्र भी प्रातः-सायं करना चाहिए। वेद मन्त्रों के द्वारा किया गया यह अग्निहोत्र मानव का कल्याण करता है। इससे वातावरण की शुद्धि होती है, क्योंकि अग्निहोत्र करते समय प्रत्येक व्यक्ति शुद्ध-पवित्र होकर उस स्थान को भी स्वच्छ करता है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपनी तथा आस-पास की सफाई करता है, स्वास्तिवाचन, शान्ति प्रकरण के मन्त्रों से विश्वकल्याण की कामनापरक मन्त्रों का उच्चारण करता है। कभी-कभी ये यज्ञ विशाल रूप से किये जाते हैं, उस समय अनेक व्यक्ति परस्पर आदान-प्रदान करते हुए सामाजिक समता, मैत्रीभाव के विकास में भी योग देते हैं। इस प्रकार देवयज्ञ राष्ट्रमन के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

भूतयज्ञ -

भूतयज्ञ का दूसरा नाम 'बलिवैश्वदेव यज्ञ' भी है। भूत-यज्ञ का विधान भोजन करने से पूर्व होता है। इस यज्ञ में मिष्ठान आदि भोजन की आहुतियाँ अग्नि में डाली जाती हैं। तदन्तर कुत्ता, भंगी, कोढ़ी आदि प्राणियों के लिए तथा पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि के लिए भोजन का भाग देकर सन्तुष्ट किया जाता है। मनु के अनुसार -

"शुनां च पतितानां शनकैर्निर्वपेद् भुवि।।"⁷

"एवं यः सर्वभूतानि च शवपचां पापरोगिणाम्।

वायसानां कृमीणां च ब्राह्मणो नित्यमचीति।

स गच्छति परं स्थानं तेजो भूर्तिपथर्जुना।।"⁸

अर्थात् श्वान, पतित, चाण्डाल, कुण्डी, यक्ष्मादि पापजन्य रोगी व्यक्ति को एवं कव्वों, चींटी-चींटों, कीटों के लिए अन्य को स्वच्छ भूमि पर रखना पुण्यदायक है। भूतयज्ञ के नित्य करने पर गृहस्थ जीवों की पूजा कर लेता है एवं मोक्ष को प्राप्त करता है। इस प्रकार भूतयज्ञ में दान एवं त्याग की भावना के साथ-साथ असमर्थ प्राणियों की मंगल कामना भी निहित है।

नृत्यज्ञ -

नृत्यज्ञ को मनुष्य यज्ञ अथवा अतिथि यज्ञ भी कहा जाता है। इसमें अतिथि अभ्यागत, साधु-महात्मा, सज्जन इत्यादि को भोजन, वस्त्र, दक्षिणा इत्यादि से सन्तुष्ट करके उनके सत्संग का लाभ उठाया जाता है। अतिथि-सेवा से गृहस्थ को उत्तम फल की प्राप्ति होती है। यह गृहस्थी का सर्वश्रेष्ठ कर्म माना गया है। धर्मग्रन्थों में वर्णित है कि, "यज्ञ, दान, अग्निहोत्र आदि से गृहस्थ को उतना फल नहीं मिल सकता, जितना अतिथि सत्कार से मिलता है। चाहे हजारों मन समिधा और सैकड़ों घड़े घृत का होम करें, किन्तु यदि अतिथि को आपने सन्तुष्ट नहीं किया, तो होम व्यर्थ है।" इसलिए अतिथि सेवा अवश्य करनी चाहिए।

मनुस्मृति के अनुसार,

"साम्प्राप्ताय त्वतिथये प्रदधासनोदके।

अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्।।"

अर्थात् आगन्तुक अतिथि का सत्कार करके उसे विधिपूर्वक यथाशक्ति भोजन कराना चाहिए।⁹ यदि भोजन का सामर्थ्य न हो, तो उसे बैठने के लिए आसन, स्थान, जल प्रदान कर मृदु वाणी से उसका स्वागत तो अवश्य ही करना चाहिए।

इस प्रकार इस यज्ञ से त्याग, दान एवं सेवा की भावना का प्रसार होता है। विद्वानों का आदर होता है। अतः यह यज्ञ भी समाज के कल्याण के लिए अपेक्षित है।

पितृ-यज्ञ -

पितृयज्ञ से आशय माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजनों की सेवा-सुश्रुषा तथा आज्ञापालन करते हुए श्रेष्ठ कर्मों का आचरण करना है। इस यज्ञ से सृष्टि-विकास की प्रक्रिया में भी महत्त्वपूर्ण योगदान मिलता है। जैसे हमारे माता-पिता ने हमें उत्पन्न कर संस्कृति में योगदान करके एक पीढ़ी का विकास किया है, उसी प्रकार हमारा कर्तव्य है कि हम आगे की पीढ़ियों को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील रहें। इस प्रकार सृष्टि विकास एवं ज्ञान-धारा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पितृयज्ञ नितान्त अपेक्षित है। मनु के अनुसार,

"कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्ये नोदकेन वा।

पयोमुल फलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन।।"¹⁰

अर्थात् गृहस्थाश्रमी अन्नादि या जल, दूध, मूल, फलापे से पितरों को सन्तुष्ट करता हुआ यथासम्भव प्रतिदिन श्राद्ध करें।

इस प्रकार आधुनिक परिवेश में भी परिवार के वृद्धजनों के प्रति श्रद्धा-प्रदान को भी पितृयज्ञ में समाविष्ट किया जाता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में पंच महायज्ञों की अत्यधिक महिमा का वर्णन मिलता है और इसे अनिवार्य कर्म बताया गया है। नियम एवं विधिपूर्वक इन यज्ञों का सम्पादन करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है और समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। वर्तमान समय में भी इन पंच महायज्ञों के महत्त्व को इस प्रकार दृष्टिगत किया जा सकता है। जैसे- ब्रह्म-यज्ञ में आत्म-निरीक्षण एवं आत्म-चिन्तन किया जाता है। जब व्यक्ति आत्म-निरीक्षण एवं आत्मचिन्तन करेगा तो वह दुर्गुणों से दूर होगा और परमात्मा से निकटता प्राप्त करेगा। ऐसी स्थिति में उसमें जन-कल्याण की भावना उत्पन्न होगी और तभी वह जन-कल्याण एवं विश्व-कल्याण की ओर अग्रसर होगा। 'देव-यज्ञ' में व्यक्ति अपने आस-पास के स्थान को स्वच्छ करता है, जिसमें पर्यावरण संचेतना है। इसमें शान्ति प्रकरण के मन्त्रों का उच्चारण किया जाता है, जिसमें समता और मैत्री भाव के विकास तथा राष्ट्र एवं विश्व कल्याण की भावना निहित है।

इसी प्रकार 'भूत-यज्ञ' में दान एवं त्याग की भावना के साथ-साथ असमर्थ प्राणियों की मंगल कामना निहित है। नृ-यज्ञ में अतिथि-सत्कार की महिमा वर्णित है। जिससे व्यक्ति से व्यक्ति का जुड़ाव, समभाव तथा सम्मान को बढ़ावा मिलता है, जो आज की प्रमुख आवश्यकता है। पितृ-यज्ञ में माता-पिता तथा वृद्धजनों के प्रति सम्मान अपेक्षित है, जो आज हमारे समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि आज हम अर्थप्राप्ति की अंधी दौड़ में ऐसे विह्वल हो गये हैं कि उनके सम्मान और अपेक्षाओं को कहीं-न-कहीं नजरअंदाज कर रहे हैं। पितृ यज्ञ में हमें गुरु, माता-पिता एवं गुरुजनों के आज्ञापालन एवं सम्मान की शिक्षा देना है। इस प्रकार ये पंचमहायज्ञ प्राचीनकाल में तो उपयोगी थे ही, आज भी हमारे समाज के लिए उतने ही उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हैं।

सन्दर्भ

- (1) ऋग्वेद - 1/164/34.
- (2) अथर्ववेद - 9/10/14.
- (3) मनुस्मृति - 4/21.
- (4) यज्ञमीमांसा - पण्डित वेणीराम शर्मा गौड़, पृ०-34.
- (5) मनुस्मृति - 2/101.
पूर्वा संध्यां जपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमर्गदर्शनात् ।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यक्तक्षविभावनात् ॥
- (6) मनुस्मृति - 3/76.
- (7) मनुस्मृति - 3/92.
- (8) मनुस्मृति - 3/93.
- (9) श्रीमद्भगवद्गीता - 3/13.
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यते सर्वकिल्बिषै ।
भुंजते ते त्वधं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥
- (10) मनुस्मृति - 3/82.

